International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 226-229

प्राचीन भारत में सामन्तवाद

अतुल कुमार सिंह
शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्य प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

समान्त संस्था का उद्भव एक ऐसी विशिष्ट संस्था की खोज थी जिसने उत्तर–गुप्त काल को प्राचीन भारत के दूसरे युगों से अलग एक नवीन प्रकार की विशिष्टता प्रदान की। 'सामन्त' शब्द का मौलिक भावार्थ पड़ोसी से था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र और अशोक के स्तम्भ अभिलेखो में इस शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है कि मौर्य काल में इस शब्द को समीपवर्ती क्षेत्र के स्वतन्त्र शासक के लिये प्रयोग किया जाता था। गुप्त काल से पूर्व विधि–निर्माताओं द्वारा इस शब्द का इस्तेमाल भूमि पर पड़ोसी के स्वामित्व के भावार्थ के लिये किया गया। समुद्रगुप्त द्वारा अपनी प्रयाग प्रशस्ति में सीमावर्ती राजाओं (प्रत्यान्तर्निपति) के लिये सामाना शब्द का प्रयोग इसके मौलिक भावार्थ में किया गया। गुप्त शासन के अन्त में और निश्चित तौर पर छठी शताब्दी ई0 से इस शब्द ने व्यापक तौर पर एक नये भावार्थ को ग्रहण कर लिया था। और अब इसका अभिप्राय हो गया एक अधीनस्थ तथा इसका इस्तेमाल किसी राज्य के पुनः स्थापित सहायक राजकुमार के लिये होने लगा। सामन्तो का उद्भव तथा विकास सामान्तीय शासनों के विकास की एक विशिष्ट प्रकार की संरचनात्मक विशेषता थी। प्राचीन भारत के प्रारम्भिक दौर में प्रशासको की नियुक्ति केन्द्रीय शासन द्वारा उपर की ओर से की जाती थी। लेकिन उत्तर–गुप्त काल से सामन्तीय प्रदेशों पर नियन्त्रण राजकुमारों का होने लगा। इन राजकुमारों की नियुक्ति अधीनस्थ के रूप में होती थी लेकिन ये पुनः स्थापित होने के पश्चात राजा को उपहार अदा करते और भक्ति भाव से उसकी सेवा करते। गुप्त काल के अन्त में इन प्रकार के शासकों को अक्सर सीमावर्ती प्रदेशों में देखा जा सकता था। परन्तु हर्ष के समय में और आगामी शताब्दियों में वे राज्य के केन्द्रीय भाग में भी शाक्तिशाली अधिकारी होने लगे। अपने क्षेत्र के अन्तर्गत उनके पास पर्याप्त स्वायत्तता होती थी और शीघ्र ही वे सम्पन्नता एवं सम्मान में पुराने प्रकार के गवर्नरों से काफी आगे निकल गये। इन शक्तिशाली सामन्तो को राज्य के पदानुक्रम में सम्मिलित करने के लिये राजा के दरबार में अक्सर उच्च पद प्रदान किये जाते। इसी प्रकार से पश्चिम भारत के बलभी राजा को न केवल महासामन्त का पद प्रदान किया गया बल्कि उसने महाप्रतिहार (राजकीय प्रवेश द्वार का रक्षक) और महादण्डनायक राजकीय फील्ड मार्शल के पदो को प्राप्त किया यद्यपि इस बलभी राजा को हर्ष ने पराजित कर दिया था। ठीक इसी प्रकार से केन्द्रीय दरबार के अधिकारियों ने भी पराजित राजाओ के समरूप पदों की मांग की और उचित समय पर उनको भी ये पद प्रदान किये गये। लेकिन यह शक्तिशाली पद अकेला कुछ न कर सकता था, इसलिये इस पद के साथ अधिकारीगण कुछ भूमि की मांग भी करते। इस प्रकार यह राज्य के सामन्तीकरण की प्रक्रिया थी, जिसको भारतीय मूल का सामन्तवाद माना जा सकता हैं। सामन्तीकरण की इस प्रक्रिया को दो कारकों ने और तीव्र किया, प्रथम वेतनों की अदायगी करने के लिये धन की कमी होना और दूसरे राजकीय सम्मान का राजा के सामान्तचक्र (सहायक या उपहार भेंट कर्ता राजकुमारों का चक्र) के आकार पर निर्भर होना। सरकार के प्रशासन पर रचित प्राचीन ग्रंथ अर्थशास्त्र अधिकारियों के वेतनों की विस्तृत सूची उपलब्ध कराता है, और ह्वेनसांग का कथन है कि सातवीं शताब्दी ई0 में राज्य के उच्च अधिकारियों को नगद वेतन दिया जाता था। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आर्थिक मंदी और सिक्कों के चलन में आई कमी ने यह अनिवार्य कर दिया था कि अधिकारियों को कुछ गाँवो के राजस्व वसूली करने का अधिकार निर्दिष्ट कर उनके वेतनों की अदायगी की जाये या इस उदेश्य के लिये सम्पूर्ण जनपद के राजस्व वसूली का अधिकार भी प्रदान कर दिया जाता था और ये अधिकारीगण इसको अपनी जागीर समझने लगते थे। कुछ तत्कालिक रचनाओं से स्पष्ट है कि राजा इस प्रकार के समर्पण को निरस्त करने के लिये तत्पर रहता था, विशेष कर उन मामलों में जहाँ का अधिकारी अपने शासक का विरोध कर देता था। लेकिन सामान्य तौर पर सामन्तीकरण की प्रक्रिया केन्द्रीय शासक की इच्छा से कहीं अधिक शक्तिशाली होकर आगे बढ रही थी।

प्राचीन भारत में सामन्तवाद के कारण

भूमिदान

सामन्तवादी प्रथा के प्रादुर्भाव में सबसे महत्वपूर्ण योगदान ब्राह्मणों को दान में दी जाने वाली भूमिदान प्रथा का विकास था। भूमिदान की प्रथा को महाकाव्यो और पुराणों में पुण्य कार्य बताया गया है। महाभारत तथा पुराणो को अन्तिम रूप गुप्त युग के आस–पास दिया गया। इससे ज्ञात होता है कि भूमिदान गुप्त युग में राजा का कर्तव्य समझा जाने लगा। भूमिदान सम्बन्धी सबसे प्राचीन अभिलेखिय प्रमाण प्रथम शताब्दी के एक सातवाहन अभिलेख में प्राप्त होता है जिसमें अश्वमेध यज्ञ में एक ग्राम दान करने का वर्णन है। लगभग पाँचवी शताब्दी में भूमिदान की प्रवृति बढने लगी इस प्रकार राजा ने अपने नियंत्रण को उन स्थानों पर से हटा दिया जो स्थान भूमिदान के रूप में दे दिये जाते थे क्योकि अब तक राजा का उत्तदायित्व जनता को आन्तरिक सुरक्षा, शान्ति व्यवस्था, आदि का प्रबन्ध करना स्वीकार किया जाता था और इसके बदले राजा कर प्राप्त करने वाला होता था। अब ये दोनों अधिकार जिस वर्ग के हाथ में आ गये उन्हे सामन्त वर्ग कहा जा सकता है। अभिलेखीय साक्ष्यो में प्राप्त विवरणों से पर्याप्त प्रकाश उपर्युक्त तथ्यों पर पडता है। आश्चर्यजनक ढंग से द्वितीय शताब्दी में गौतमी पुत्र सातकर्णी द्वारा सर्वप्रथम बौद्ध भिक्षुओं को भूमिदान के सम्बन्ध में प्रशासकीय अधिकारों के त्याग की चर्चा अभिलेखों में मिलती है। दान में दी गयी भूमि में न तो राज्य सैनिक प्रवेश कर सकते थे, न प्रशासनिक अधिकारी लोगो को प्रताडित कर सकते थे और न ही विषमदाण्डिक हस्तक्षेप कर सकते थे। द्वितीय शती के दान लेख केवल राजा के लवण पर नियंत्रण का हस्तांतरण बताते है। इसका

अभिप्राय यह हुआ कि आपके अन्य स्त्रोतों पर राजा का अधिकार था। परन्तु पाँचवी शताब्दी के दान लेखों से ज्ञात होता है कि राजा ने आय के लगभग सभी स्त्रोतों पर अपने अधिकार का त्यागकर दिया था। आय के इन स्त्रोतों के अन्तर्गत चारागाह, पशु त्वचा, कोयला, नमक की खाने, बिष्टि, जखीरे तथा भूमि में छिपी संपदा आते थे। चतुर्थ तथा पाँचवी सदी के लेखों के अनुसार गाँवो की सम्पदा तथा भूमि में छिपे जखीरों पर ब्राह्मणों का अधिकार था। यह खानों पर राजा के अधिकार के हस्तांतरण का सूचक है। कम से कम गुप्तयुगीन आधे दर्जन लेखो से ज्ञात होता है कि भूमिदान के साथ–साथ गाँव की भूमि से उत्पत्र होने वाली आय भी ग्रहीता को सौंप दी जाती थी। दानपत्रों में कृषकों, कलाकारो आदि को यही आदर्श दिया गया है कि वे कर अपने भूपति को दें तथा उनकी आज्ञाओं का भी पालन करें। भूपति कृषकों और कृषकों की स्त्रियों से बेगार भी ले सकता था। बल्कि मैत्रक शासक के धनतेरस के 575 ई0 के एक दानपत्र द्वारा गृहीता को बेगार में मिलता है। इसमें यह कहा गया है कि दान में प्राप्त भूमि के साथ–साथ ग्रहीता बेगार भी ले सकता था।

पाँचवीं सदी तक के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि राजा चोरों को दण्डित करने का अधिकार नहीं त्यागता था। परन्तु आगे चलकर चोरों को दण्डित करना या परिवार की सम्पति इत्यादि के झगडों पर न्याय देने का अधिकार भी भूमिदान के साथ–साथ ब्राह्मणों को हस्तांतरित किया जाने लगा।

साहित्यिक तथा अभिलेखीय प्रमाणों के अनुसार राज्य के सप्तांगो में कोष तथा दण्ड महत्वपूर्ण अंग थे। इनके पतन से राज्यशक्ति का विघटन हो जाता है। परन्तु ब्राहाणों को दी जाने वाली भूमिदान से इन दोनों अंगों पर ब्राह्मणों का प्रभुत्व बढने लगा। पाँचवीं शताब्दी के बुद्धघोष ने ब्राह्मण्यदेव दान पर टिप्पणी करते हुए कहा कि ब्राह्मण्यदेव के न्यायिक तथा प्रशासनिक अधिकार भी दिये जाते है। इसकी पुष्टि समकालीन अभिलेखीय साक्ष्यों से भी हो जाती है। इस प्रकार गुप्त युग नें बहुप्रचलित सामन्त प्रथा को जन्म दिया। ये ब्राह्मण सामन्त अपने प्रशासकीय अधिकारों का उपयोग स्वतत्र होकर करते थे।

प्रशासनिक विकेन्द्रीकण एवं स्थानीय अधिकारियों की स्वायत्तता

शासन की विकेन्द्रीकरण प्रवृतियों ने भी सामन्ती प्रवृतियों को बढावा दिया। निश्चय ही गुप्त युग में अधिकारियों को उनकी सैनिक तथा प्रशासनिक सेवाओं हेतु भूमि दान सम्बन्धी प्रत्यक्ष अभिलेखीय साक्ष्यों का अभाव है, यद्यपि ऐसी सम्भावना को रद्द नहीं किया जा सकता है। मनुस्मृति में एक, दस, बीस, सौ तथा एक हजार गाँवों पर अधिकार रखने वाले राजस्व अधिकारियों को भूमिदान देने की चर्चा की गयी है। बृहस्पति ने भी इस व्यवस्था का उल्लेख किया है, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त युग में भी ऐसी व्यवस्था का प्रचलन रहा होगा। गुप्त–लेखों में इस व्यवस्था का वर्णन नहीं मिलता है परन्तु पाल वंश के अभिलेखों में ग्रामपति तथा दशग्रामिक के वर्णन मिलते है। मनुस्मृति में आये वर्णन ग्रामपति तथा दशाग्रामिक के अर्थ समझे जा सकते है। पूर्व–गुप्तयुगीन राज्यों में कर–संग्रह राज्य का प्रमुख कार्य था, परन्तु गुप्त युग से राज्य ने इस दायित्व को सामन्तों के कन्धों पर डाल दिया। ग्रामभोजक, ग्रामपति, दशग्रामिक आदि कृषकों तथा सरकार के मध्य बिचोलिया थे। अब कर–संग्रह उनका प्रमुख कार्य था। इसके लिए वे राज्य से भूमि प्राप्त कर ग्रहीता कहलाने लगे। इस प्रकार राज्य तन्त्र के सामन्तीकरण का यह एक कारण स्वीकार किया जा सकता है।

प्रो0 आर0 एस0 शर्मा का मत है कि गुप्तोत्तर काल में अधिकारियों को नगद वेतन के स्थान पर भूमि आवंटन ने सामन्तवादी प्रवृतियों को और अधिक बल प्रदान किया। चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरण के आधार पर हर्षकालीन गवर्नर, मंत्री आदि को प्रस्तुत किया गया है। सम्भवतः मुद्रा का कम प्रसार होना भी एक कारण था। अभिलेखों में भोगिक तथा भागपतिक अधिकारी भूमि से प्राप्त आय का उपयोग करते थे। सामान्यतः भोगिक पैत्रृक अथवा आनुवंशिक होते थे। विभिन्न अभिलेखों से तीन पीढियों तक भोगिकों के उल्लेख मिले है। इस प्रकार भोगिक एक शक्तिशाली सामन्त के रूप में उमडे, उन पर केन्द्रीय सत्ता का अंकुश समाप्त होने लगा था। लगभग 507 ई0 में जब महाराजाधिकारी श्री गोयचन्द्र का सामन्त महाराज विजय सेन जब वर्धमान युक्ति पर शासन कर रहा था तो वहाँ पर लगभग एक दर्जन अधिकारियों में से एक भोगपतिक भी था। डॉ0 डी0 सी0 सरकार के अनुसार, भोगपतिक सम्भवत; एक जागीरदार था। अभिलेखीय सामग्री की विवेचना करते हुए आर0एस0 शर्मा का कहना है कि भोगिक, भोगपतिक तथा भोगिकपालक शब्दों से सामन्ती सम्बन्धों की गंध आती है।

अधिकारियों का वंशवाद

गुप्तकाल तथा गुप्तोत्तर काल में प्रादेशिकों एवं विषयपतियों की आनुवांशिक प्रवृत्तियों से केन्द्रीय शक्ति की उपेक्षा हुई जिससे प्रशासन का पुनः सामन्तीकरण हुआ। तिथिविहिन उदयागिरि गुहालेख में मंत्री बीरसेन शाब को "अन्वयप्राप्त साचिष्य" कहा गया है, अर्थात गुप्त युग में मन्त्रिपद आनुवंशिक होने लगा था। ध्यान आकर्षित करते हुए आर0एस0 शर्मा का विचार है कि वैशाली तथा मध्य भारत में अमात्य पद भी आनुवंशिक हो गया था।

प्राचीन भारतीय समाज एवं शासन गुप्तकालीन ग्राम्याध्यक्ष

गुप्त युग में ग्रामयाध्यक्षों की नियुक्ति राजा द्वारा की जाती थी तथा वे मुख्यतः अपने निजी स्वार्थो में संलग्न थे। उनकी स्थिति अर्द्धसामन्त अधिकारियों जैसी हो रही थी। प्रारम्भिक पाँचवीं शती के कुछ मध्य भारतीय अभिलेखों में एक ग्राम अधिकारी आयुक्त का उल्लेख हुआ है। यह ग्रामवासियों के उत्पादन का एक अंश अपने निर्वाह के लिए प्राप्त करता था, सम्भवतः उसका अधिकांश भाग राजा को भेजता होगा। उल्लेखनीय है कि वह कृषक स्त्रियों से बेगार ले सकता था। आर0एस0 शर्मा का मत है कि राजा के लिए नहीं अपितु अपनी निजी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वह बेगार लिया करता था।

गुप्त युग में एक नवीन प्रकार के राज्य का उदय हुआ जो राजकीय प्रिय पात्रों का अड्डा बन गया था। माकण्डेय पुराण के अनुसार, ऐसे गाँव में अधिकाँश दुष्ट तथा शक्तिशाली लोग रहते थे जिनके पास कोई भी भूमि नहीं थी। वे दूसरों की भूमि पर आश्रित रहते थे। राजकीय प्रिय पात्रों का यह वर्ग बिचौलिया बन गया था। यह समान्तवादी विकास का सहवर्ती बन गया था।

विजयें

राजाओं की साम्राज्यवादी नीतियों ने भी सामन्तवादी प्रथा को जन्म दिया। इसका प्रारूप समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में देखने को मिलता है। समुद्रगुप्त ने शासकों को जीता तथा उनके साथ ग्रहण, मोक्ष और अनुग्रह की नीति अपनायी। गुप्त शासक दूरवर्ती राज्यों के शासकों को अपनी अधीनता स्वीकार कराके और उनसे वार्षिक कर तथा उपहार लेकर ही सन्तुष्ट थे। उन्होने उनके आन्तरिक शासन में हस्तक्षेप करकें, केन्द्रीय शासन के उतरदायित्व को बढाने की चेष्टा नहीं की। इस प्रक्रिया ने सामन्ती सम्बन्धों को बढा दिया। छठीं शताब्दी में विजित राजाओं को सामन्त कहा जाने लगा।

सामन्तवाद की विशेषता एवं प्रभाव

सामन्तवाद के उदय के साथ कुछ सामान्य विशेषताएँ और राजनीतिक तथा आर्थिक प्रभाव प्रतिबिम्बित होते है। इनकी विवेचना करने से अग्रलिखित तथ्य आलोक में आते है–

भूमिदान

गुप्तकालीन लेखों से हमें भूमिदान के उल्लेख मिलते है। अधिकांशतः भूमिदान ब्राह्मणों को दिया गया है। इसका उद्देश्य दानकर्ता अथवा उसके पूर्वजो के लिए आध्यात्मिक कल्याण था। परन्तु प्रो0आर0एस0 शर्मा का विचार है कि ब्राह्मणों को दिये जाने वाले भूमिदान का केवल धार्मिक उदेश्य ही नहीं था। अपितु एक राजनीतिक आवश्यकता भी थी क्योंकि ब्राह्मणों को भूमिदान का स्वरूप स्थायी था तथा इस भूमि में राजा के अधिकरी अथवा सैनिक प्रवेश निषिद्ध था।

इसका स्पष्टीकरण वाकाटक नरेश प्रवरसेन द्वितीय के दानलेख में मिलता है। इसमें चर्चा की गयी है कि दान में दिये गये गाँव का उपयोग हजार ब्राह्मण इस शर्त पर कर सकते है कि वे साम्राज्य में कोई षड्यंत्र नहीं करेंगें, ब्राह्मण का वध नही करेंगे, चोरी तथा बलात्कार नहीं करेंगे, राजाओं को गुमराह नहीं करेंगे, युद्ध नहीं करेंगें तथा ग्रामीणों को प्रताडित नहीं करेंगे। इसका उद्देश्य पुरोहितों का केवल समर्थन ही करना था परन्तु ब्राह्मणों के विरोध पर रोक लगाना भी था। यद्यपि यह नकारात्मक है, फिर भी इसका दृष्टिकोण स्पष्टतः राजनीतिक है। पाँचवीं शती के बुद्धघोष के अनुसार ब्राह्मण्यदैव के साथ न्यायिक तथा प्रशासकीय अधिकार भी जुडे थे।

वास्तव में दानकर्ताओं के उद्देश्य चाहे जो भी रहे हो, भूमिदान के कारण ऐसे बिचौलियों का उदय हुआ जिन्हें पर्याप्त आर्थिक तथा राजनीतिक शक्तियाँ प्राप्त थी। दानग्रहीत ब्राह्मणों की संख्या धीरे–धीरे बढ़ने लगी, पौरोहित्य कार्यो के स्थान पर उन्हें राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकार प्राप्त हो गये, जिसके कारण प्रशासन की विकेन्द्रीकरण प्रवृत्तियाँ अधिक प्रबल हो गयी, भूमिदान के साथ–साथ गाँव की भूमि से उन्पन्न होने वाली आय भी ग्रहीता को सौंप दी जाती थीं। दानपत्रों में कृषकों को यही आदेश दिया गया है कि वे कर अपने भूपति को दें। भूपति कृषकों और कृषकों की स्त्रियों से बेगार भी ले सकता था। बलभी के पैत्रक शासक धारसेन के 575 ई0 में एक दानपत्र द्वारा ग्रहीत को बेगार लेने का अधिकार दिया गया है। इसी प्रकार का प्रमाण शिलादित्य प्रथम के 605 ई0 के दानपत्र में मिलता है, जिसमें यह कहा गया है कि दान में प्राप्त भूमि के साथ–साथ ग्रहीता बेगार भी ले सकते थे। भूमिदान की प्रवृति ब्राह्मणों को भूमिदान से प्रारम्भ हुई थी, पर हर्ष के समय तक राज्याधिकारों को भी भूमिदान दिया जाने लगा था। ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि राज्याधिकारियों को नकद वेतन नहीं मिलता था बल्कि राजस्व का 1/4 भाग बडे–बडे अधिकारियों की वृति के रूप में सुरक्षित रखा जाता था।

भूमिदान का अन्य प्रशासनिक प्रभाव यह पड़ा कि राजा ने अपने नियंत्रण को उन स्थानों पर से हटा दिया जो स्थान भूमिदान के रूप में दिये जाते। भूमिदान के पहले राजा का उत्तरदायित्व जनता को आन्तरिक सुरक्षा, शांति–व्यवस्था आदि का प्रबन्ध करना माना जाता था और इसके बदले वह कर प्राप्त करने वाला होता था। ये दोनों कार्य अब भूमिदान प्राप्तकर्ता के हाथों में चले गये। इन्हें ही सामन्त कहा गया। पाँचवी शती तक के अभिलेख से विदित होता है कि राजा चोरों को दण्डित करने का अधिकार नहीं त्यागता था, परन्तु परवर्ती युगों में चोरों को दण्डित करना या परिवार की सम्पति इत्यादि के झगड़ों पर न्याय देने का अधिकार भी भूमिदान के साथ ब्राह्मणों को हस्तांतरित किया जाने लगा।

उल्लेखनीय है कि गुप्तकाल के प्रारम्भिक चरण में गुप्त साम्राज्य के केन्द्रीय प्रान्तों में किसी भी सम्राट की अनुमति के बिना स्वयं भूमिदान देने का अधिकार नहीं था। परन्तु छठी शती तक हमें ऐसे साक्ष्य मिलने लगते है जहाँ कुमारामात्य नंदन जैसे समान्त भी साम्राज्य की आज्ञा के बिना भूमिदान करने लगे। जब सामन्त अपनी–अपनी भूमि के वास्तविक शासक बन गये थे।

विकेन्द्रीकरण की प्रवृति न केवल ब्रह्मदेव भूमि पर ब्राह्मणों के भूमिपति बन जाने से उत्पन्न हुई, वरन जब गुप्त शासकों उपरिक, कुमारामात्य इत्यादि जैसे अपने प्रमुख कर्मचारियों को वेतन के बदले में भूमिदान देना प्रारम्भ कर दिया और उनका पद क्रमशः वंशपरम्परागत बनने लगा, तब ये उपरिक और कुमारामात्य इत्यादि भी सामन्तों की तरह स्वतंत्र हो गये। डा0 आर0एस0 शर्मा के अनुसार, इस प्रकार अमात्य और कुमारामात्य सामन्त विरूद्ध बनते गये। सातवीं शताब्दी में सामन्तवादी उपाधियाँ बड़े–बड़े पदाधिकारियों को भी प्रदान की गयीं। उदाहरणस्वरूप, भास्करवर्मन के कोषाध्यक्ष (भांडागारधिकृत) दिवाकर प्रभु को महासामन्त की उपाधि से अलंकृत किया गया।

सामान्य रूप में कभी–कभी सामन्त लोग राजा को अवसर पडने पर सैनिक सहायता भी देते थे। ऐहोल लेख में कहा गया है कि हर्ष की सेना सामन्तों की सेना से युक्त थी। इसका प्रभाव यहाँ तक पड़ा कि सम्राट सामन्तों पर निर्भर हो गये, इससे केन्द्रीय शक्ति शिथिल हो गयी।

दान में दिये क्षेत्रों से जब भूमि कर राजा को प्रत्यक्ष से न मिलकर सामन्तों, ब्राह्मणों भूपतियों और राज्य के उच्च पदाधिकारियों के माध्यम मे माध्यम से मिलने लगा तो उसका केन्द्रीय कोष पर कुप्रभाव पड़ा। सम्भवतः इसी का यह परिणाम हुआ कि अब राजा स्थायी विशाल सेना, नहीं रख सकता था जिसके कारण वह सामन्तीय सेना पर अधिक से अधिक निर्भर रहने लगा।

भूमिदान पत्रों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि शिल्पी, व्यापारी आदि विभित्र व्यवसाय के लोग ग्रहीता की भूमि को छोड़कर नहीं जा सकते थे। सामन्तवाद के प्रभाव के बढ़ जाने से गरीब मजदूरों को बेगार और और अर्द्धदास की स्थिति का सामना करना पड़ा। उपर्युक्त भूमिदान के सन्दर्भ से हमें स्पष्ट होता है कि जो भूमि ब्राह्मणों या उच्च राज्यधिकारीयों को दान में दी जाती थी वहाँ जनता की सुरक्षा का उत्तरदायित्व भी राजा त्याग देता था, और वहाँ की जनता को स्थानीय भूपतियों के शोषण का शिकार होना पड़ता था।

पूर्व–मध्ययुगीन भारत में सामन्त प्रथा के आर्थिक दुष्परिणमों का आंकलन महत्त्वपूर्ण है। ब्राह्मणों को भूमि दान में तथा सामन्तों को जागीर में मिलती थी। उस पर शूद्र कृषकों द्वारा बटाई पर खेती होती थी। इन कृषकों की तुलना यूरोप के कृषि–दासों से की गयी है। जहाँ भूमि सामन्तों को दी जाती थी वहाँ कृषको को अनेक प्रकार के कष्टकरी कर देने पड़ते थे। सामन्तीय व्यवस्था के कारण राजा एवं कृषक के मध्य अनेक बिचौलिये होते थे। कृषक इन बिचौलियों को खेत की उपज का भाग देते थे। दसवीं तथा बारहवीं शताब्दी के लेखों से ज्ञात होता है कि कृषक को राज्य के अनेक कर्मचारियों को उपज का अंश देना पड़ता था। सामन्तीय युग में राजाओं तथा सामन्तों के परस्पर युद्ध के कारण फसल को बहुत हानि उठानी पड़ती थी। सुभाषित रत्न में उदधृत वराहमिहिर के एक परिच्छेद में कहा गया है कि भोगपति (जागीरदार या सामन्त) के अत्याचार से पीड़ित होकर किसानों ने गाँव ही छोड़ दिया था।

डॉ0 आर0 एस0 शर्मा के अनुसार सामन्तवाद ने आत्मनिर्भर स्थानीय निकायों को जन्म दिया। वात्सयायन के कामसूत्र से ज्ञात होता है

कि कृषक स्त्रियों को बाध्य होकर बुनकारों का कार्य करना पड़ा। ग्रामीणों की आवश्यकता की पूर्ति इन लघु उद्योगों के उत्पादन से होने लगी। आत्मनिर्भर स्थानीय निकायों की वृद्धि का स्पष्टीकरण गुप्तोत्तर काल में सिक्कों के कम प्रचलन से किया जा सकता है। आन्तरिक व्यापार का हास भी हुआ। लोगों की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति स्थानीय उत्पादन से हुई। केन्द्रीय शक्ति के शिथिल हो जाने, सिक्कों के क्रम प्रचलन के फलस्वरूप अधिकारियों को जागीर अथवा भूमि दान में दी जाने लगी। इन सभी कारणों से सामन्तवाद के उदय का मार्ग प्रशस्त हुआ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अल्तेकर, ए.एस,– प्राचीन भारतीय शसन पद्धति
2. चौधरी, राधाकृष्ण, – प्रचीन भारतीय राजनीति और शासन व्यवस्था
3. पाण्डेय, जय नारायण, पुरातत्व विमर्श, 2006
4. भण्डारकर, डी.सी, – लेक्चर्स ऑन एन्शियन्ट हिस्ट्री ऑव इंण्डिया
5. थापार, रोमिला, –प्राचीन भारत का इतिहास, नई दिल्ली
6. परमानन्द, – बौद्ध साहित्य में भारतीय समाज, वाराणसी 1996
7. सिंह, ओ.पी, – प्राचीन भारतीय समाज एवं शासन
8. सेंगर,शैलेन्द्र, –प्राचीन भारत का इतिहास, अटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीटब्यूटर नई दिल्ली 2005 अन्तरष्ट्रिय
9. शर्मा, रामशरण, – प्रारंभिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली
10. शास्त्री, चतुर्शेन, – बुद्ध और बौद्धधर्म, लखनउ 1996
11. श्रीवास्तव, – के0 सी0, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, इलाहाबाद यूनाईटेड बुक डिपो।